Gyanvividha, Vol.-3; Issue-2 (Apr.-June) 2026 : PP-111-114

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-4.5
Vol.-3; Issue-2 (Apr.-June) 2026
Page No.- 111-114
©2026 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

Author's :
अंकिता एक्का
शोधार्थी, हिंदी विभाग, रांची, विश्वविद्यालय, रांची, झारखंड.

Corresponding Author :
अंकिता एक्का
शोधार्थी, हिंदी विभाग, रांची, विश्वविद्यालय, रांची, झारखंड.

हिंदी साहित्य में विविध विमर्श

प्रस्तावना:- हिंदी साहित्य भारतीय समाज की आत्मा का प्रतिबिंब होता है जिस प्रकार समाज में विचार चेतना, संघर्ष और परिवर्तन की प्रक्रियाएं आदिकाल से चली आ रही है, ठीक उसी प्रकार साहित्य में भी कई परिवर्तनों की प्रतिध्वनि सुनने को मिलती है। साहित्य में केवल कल्पना का संसार ही नहीं अपितु पूरे यथार्थ जीवन का सजीव चित्रण मिलता है। जब समाज में विभिन्न प्रकार के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राज-नीतिक परिवर्तन हुए तब उनसे जुड़े मुद्दे साहित्य में विमर्श के रूप में उभरे। 'विमर्श' शब्द का अर्थ है किसी विषय पर गहराई से विचार विमर्श या तर्कपूर्ण चिंतन करना। हिंदी साहित्य में विविध विमर्शों का तात्पर्य है कि समाज में व्याप्त विभिन्न वर्गों, जातियों, लिंगो, समुदायों और पर्यावरणीय समस्याओं से संबंधित चिंतन और उनका साहित्यिक प्रस्तुतीकरण करना।

वर्तमान समय के साहित्य में विविध विमर्शों को लेकर होने वाली चर्चाएं व्यक्ति में एक प्रकार से जागृति उत्पन्न किया है। ये विमर्श हिन्दी साहित्य जगत में एक नया रुप और नई दिशा बनकर उभरा। जिसमें व्यक्ति कई सारे विमर्शों से परिचित होकर स्वयं को, समाज को, राष्ट्र को और सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र साहित्य जगत में विभिन्न विमर्शों के माध्यम से जागरूकता उत्पन्न करने का प्रयास किया है। विमर्शों के माध्यम से उठी जागरूकता के कारण आज हिंदी साहित्य में विभिन्न मुद्दों पर प्रखरता से संगोष्ठियां और विचार विमर्श हो रहा है।

आदिकाल से ही विमर्शों का साहित्य में स्थान रहा है परंतु वर्तमान समय में कई विमर्श जिसकी चर्चाएं खूब जोरों से हो रहा है। इस तरह से साहित्य में विमर्शों ने नया मोड़ लाने का प्रयास किया है। समाज में उपेक्षित एवं हासिये पर पड़े ऐसे वर्गों का समूह जिनकी समस्याओं, संघर्षों, परिस्थितियों व जीवन से जुड़े अनुभवों को केंद्र में रखकर उनके उत्थान व प्रगति के लिए किया गया प्रयास ही साहित्यिक क्षेत्रों में विविध विमर्श को उजागर करता है। जिसमें स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, वृद्ध विमर्श, बाल विमर्श, किसान विमर्श, मजदूर विमर्श, आदिवासी विमर्श, किन्नर विमर्श, पर्यावरण विमर्श, दिव्यांग विमर्श आदि कई मुद्दे और पहलुएं हैं जिन्हें साहित्य जगत में शामिल किया गया है। विभिन्न

विमर्शों के माध्यम से ही समाज में पीड़ित, शोषित, दमित, उपेक्षित और हासिये पर पड़े विभिन्न समुदायों का प्रतिनिधित्व करते हुए ये विमर्श समाज के सामने कई तरह के चिन्तनयुक्त प्रश्न और चुनौतियां खड़े करतीं हैं।

बीज शब्द :- प्रतिबिंब, चेतना, संघर्ष, प्रतिध्वनि, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, मुद्दे, सामुदाय, साहित्य, हासिये, उपेक्षित, प्रतिनिधित्व, अभिव्यक्त, प्रस्तुतीकरण।

मूल आलेख : 'विमर्श' शब्द का अर्थ **मानक हिंदी कोश** में- "विचारण, आलोचना, व्याकुलता, क्षोभ, उद्वेग"[1] तथा **अंग्रेजी हिंदी शब्दकोश** में- "भषण, प्रवचन और प्रबंध है।"[2] इसके अतिरिक्त विमर्श का अर्थ बताते हुए अभय कुमार दुबे ने कहा है- **"दो वक्ताओं के बीच संवाद या बहस या सार्वजनिक चर्चा अर्थात भाषण, परीक्षा, आलोचना, विचरण, गुण दोष की मीमांसा आदि शब्द विमर्श के समानार्थी प्रतीत के होते हैं।"[3]** विमर्श शब्द से जहां बातचीत और वार्तालाप इत्यादि अर्थ स्पष्ट होते हैं वहीं साहित्यिक रुप में इसका अर्थ किसी भी गंभीर एवं महत्वपूर्ण विषय का गहनता से विवेचन, विश्लेषण, परीक्षण मीमांसा करते हुए अंततः तर्कसंगत निर्णय पर पहुंचने का प्रयत्न है। उपरोक्त चर्चा के आधार पर यह स्पष्ट है कि यदि किसी जाति, वर्ग, क्षेत्, व्यक्ति इत्यादि की पहचान प्राप्त करने के लिए जो चर्चाएं वार्तालाप या बातचीत की जाती है तो वह विमर्श का रुप लेती है।विमर्शों को यदि हम एक-एक करके देख तो उन विमर्शों में व्याप्त समस्याओं संघर्षों तथा कठिन परिस्थितियों को समाज के सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है जिनमें है:-

आदिवासी विमर्श:- यह विमर्श आज न केवल हिंदी साहित्य में बल्कि विश्व की अन्य भाषाओं के साहित्य में भी एक महत्वपूर्ण विमर्श के रूप में प्रस्तुत किया गया है अर्थात पहले आरंभ तो आदम का अरबी अर्थ मनुष्य का आदि प्रजापति मनु के समानांतर है। आदिवासी शब्द का प्रयोग किसी भाव वैदिक क्षेत्र के उन निवासियों के लिए किया जाता है जिनका उसे भौगोलिक क्षेत्र से ज्ञात इतिहास में सबसे पुराना संबंध रहा हो आदिवासी शब्द आदि और वासी से मिलकर बना है जिसका अर्थ होता है मूल निवासी। आदिवासियों को कई नाम से जाना और पहचाना जाता है जैसे जनजाति, आदिवासी वनवासी, आत्विका, गिरिजन, अनुसूचित जनजाति आदि। आदिवासी अर्थात किसी प्रदेश या राज्य के मूल निवासी होते हैं। आदिवासियों को परिभाषित करने का प्रयास अनेक विद्वानों ने किया है जैसे प्रोफेसर गिलानी के शब्दों में "एक विशिष्ट हो प्रदेश में रहने वाला सामान बोली बोलने वाला अक्षरों की पहचान न होने वाला समूह आदिवासी कहलाता है"[4] तथा डॉ विवेकी राय के शब्दों में "पिछड़ी अंचलों पहाड़ों वनों के निवासियों को आदम आदिवासी माना जाता है। प्रकृति की गोद में जीवन यापन करने वाला संतान भारत में महाराष्ट्र, आंध्र, केरल, उत्तराखंड ,झारखंड,बिहार, नागालैंड, असम, राजस्थान, मणिपुर, त्रिपुरा, पश्चिम बंगाल आदि राज्यों में आदिवासी निवास करती है। भारत में कुल जनसंख्या का 30 प्रतिशत आदिवासी है।"[5] जिसमें अधिकतर आदिवासी दलित तथा अन्य पिछड़े वर्ग के लोगों का समूह गाँव में निवासरत है। आदिवासी समाज के बारे में नेहरू का वक्तव्य है **"यदि सामान्य कारकों को अपना काम करने दिया जाए तो बाहर के बेईमान लोग उनकी सारी जमीन और जंगल हड़पकर जनजातीय लोगों के जीवन में हस्तक्षेप करने लगेंगे।"[6]**

दलित विमर्श– शोषितों के आत्मसंघर्ष की कहानी बताने वाला साहित्य को दलित साहित्य कहा जाता है। इस साहित्य के अंतर्गत उपेक्षित, शोषित एवं वंचित वर्गों को शामिल किया गया है। विभिन्न दलित साहित्यकारों की रचनाओं का अध्ययन करने से पता चलता है कि दलितों को विभिन्न नामों जैसे-चांडाल, अछूत, चमार, शूद्र जैसे कई शब्दों से संबोधित किया गया है। इस तरह से दलित साहित्य दमित, शोषित और पीड़ित वर्ग की भयावह स्थिति एवं उनकी दर्दनाक जीवन गाथा को प्रस्तुत करते हुए उनके उत्थान के लिए वाणी देने में प्रयासरत है।

वृद्ध विमर्श- वृद्ध विमर्श समकालीन दौर का महत्वपूर्ण विमर्श है। आज भारत में ही नहीं बल्कि वर्तमान समय में वैश्विक स्तर पर वृद्धो की स्थिति पर विचार विमर्श और चिंतन की प्रक्रियाएं हो रही हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ ने पहल करते हुए 14 दिसंबर 1990 को निर्णय लिया कि "1 अक्टूबर अंतरराष्ट्रीय बुजुर्ग दिवस के रूप में मनाया जाएगा।"[7] वर्तमान

स्थिति को यदि देखा जाए तो आए दिन वृद्धाश्रम की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। परिवार में बुजुर्ग व्यर्थ लगने लगे हैं क्योंकि आज का युवा वर्ग टीवी और इंटरनेट में ही अपनी दुनिया तलाश रहा है। उनकी दोस्ती-रिश्तेदारी सब इंटरनेट में ही सीमित कर रह गई है, जिसका परिणाम यह है कि अब टीवी की चक्का चौंध में वृद्धो की बातें धुंधली पड़ गई है। हिंदी साहित्य जगत में रचनाकारों ने वृद्ध जीवन को लक्षित करते हुए अनेक कहानी, नाटक एवं उपन्यास का सृजन किया है। जिसमें वृद्धो के अकेलेपन, उपेक्षा पूर्ण व्यवहार, स्वजनों के अत्याचार, पीढ़ी अंतराल और शारीरिक मानसिक दुर्बलता से उत्पन्न समस्याओं को उद्घाटित किया गया है। प्रेमचंद की 'बूढ़ी काकी', उषा प्रियंवदा की 'वापसी', भीष्म साहनी की 'चीफ़ की दावत' आदि कहानी वृद्ध जीवन की पीड़ा का दस्तावेज प्रस्तुत करती हुई सामने आई है।1901 ईस्वी में 'छत्तीसगढ़ मित्र' पत्रिका में प्रकाशित माधव राव सप्रे की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' में एक वृद्ध महिला अपनी दो दिन से भूखी बैठी जमींदार से प्रार्थना करती है "अब मैंने सोचा है कि इस झोपड़ी में से एक टोकरी भर मिट्टी लेकर उसी का चूल्हा बना कर रोटी पकाऊंगी यह कहने से भरोसा है कि वह रोटी खाने लगेगी महाराज कृपा करके आज्ञा दीजिए तो इस टोकरी में मिट्टी ले जाऊं।"[8] "जमींदार मिट्टी ले जाने की अनुमति देता है, तो वृद्ध विधवा कहती है- महाराज कृपा करके इस टोकरी को हाथ लगाइए जिससे कि मैं अपने सिर पर धर लूं।"[9] साहित्यकारों ने इन रचनाओं के माध्यम से वृद्धों की पारिवारिक और सामाजिक स्थितियों तथा वृद्धों की बेबस दशा को अंकित किया है।

स्त्री विमर्श में स्त्रियों की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों व चिन्तनपरक तथ्यों पर अनेक महिला साहित्यकारों ने अपने विभिन्न रचनाओं के माध्यम से हिन्दी साहित्य जगत पर स्त्री विमर्श की चर्चा कायम रखी है । मैत्रेयी पुष्पा कृत 'बेतवा बहती रही', नमिता सिंह कृत 'अपनी सलीके' चित्र मुद्गल कृत 'एक जमीन अपनी', 'मुझे चांद चाहिए' जैसे उपन्यासों में स्त्री विमर्श की झलक देखा जा सकता है। सन 1942 में फ्रेंच समीक्षक **सिमोन द बोनवार** की 'द सेकंड सेक्स' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसमें नारी मुक्ति या स्त्री विमर्श की चर्चा आरंभ हुई। प्राचीन काल से आरंभ होकर आधुनिक समय के साहित्य जगत में देखने से यह आशय निकलता है कि नारी संबंधी विविध धारणाएं उनकी संस्कृति, सभ्यता और परंपराएं आज भी प्रचलित हैं। कहीं उसे देवी मां कहकर उसकी पूजा की जाती है तो कहीं उसी नारी को पाप की खान या भोग की वस्तु समझा जाता है। वास्तव में नारी ना तो देवी है ना दानव। वह केवल मानवी है। नारी को अबला कहना उसका अपमान है नारी सबला है। स्त्री विमर्श पर चित्रा मुद्गल करती है "आज साहित्यकार स्त्री की मुक्ति उसकी देह मुक्ति में देख रहे हैं। स्वचेतना संपन्न स्त्री विमर्श व्याख्यायित करना चाहती है कि आखिर उसकी जगह क्या है और कैसी होनी चाहिए? यानी उसकी लड़ाई देह मुक्ति नहीं मस्तिष्क मुक्ति की लड़ाई है। पुरुष सत्तात्मक भारतीय समाज का दिमाग नारी के दिमाग को नहीं मानता जिस दिन वह दिमाग की लड़ाई जीत जाएगी देह की लड़ाई भी जीत लेगी।"[10] **ज्ञान रंजन** कहते हैं "जिस लोग जीवन में हमारी रचनात्मक धारा काफी पहले विमुख हो चुकी थी, उसकी परत मैत्रीय पुष्पा ने खोल दी है।"[11]

किसान विमर्श भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि और किसान को माना जाता है। किसान की उन्नति से ही देश की उन्नति संभव है। किसान पूरे भारत देश के अन्नदाता है। वैश्वीकरण की दौड़ में किसानों की स्थिति में सुधार लाने की आवश्यकता है क्योंकि सामाजिक तथा राजनीतिक उदासीनता के कारण उन्हें बिजली, खाद और पानी जैसे अनेक समस्याओं से जूझना पड़ रहा है। कर्ज तथा शोषण किसानों में निराशा उत्पन्न करता है। जिसके कारण वह आत्महत्या जैसे कदम उठाते हैं। देश का अन्नदाता आत्महत्या यदि करें तो अन्य समाज का भविष्य क्या होगा आदि का चित्रण **पंकज सुखबीर** कृत 'काल में उत्सव' संजीव कृत 'फास' शिव मूर्ति कृत 'आखिरी छलांग' उपन्यासों में हुआ है। इस तरह से किसान विमर्श भी साहित्य जगत में चर्चा का केंद्र रहा है।

किन्नर विमर्श भी 21 सदी में चर्चा का विषय रहा है। किन्नर समाज एक ऐसा समुदाय है, जो समाज के बीचो-बीच में उपस्थित है परंतु उनका अपना कोई अस्तित्व नहीं है। वे समाज में तिरस्कार और अपमान का अंश झेलने के लिए बाध्य

है। किन्नर उपहास के पात्र समझे जाते हैं। किन्नर समुदाय को तरह-तरह की समस्याओं, कठिनाइयों तथा विभिन्न परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। इसलिए उन्होंने संवैधानिक रूप से अपना अधिकार पाने का प्रयास कर रहा है। **महेंद्र भीष्म** द्वारा लिखित 'किन्नर कथा' 2011, **प्रदीप सौरभ** कृत 'तीसरी तारीख' 2014, **चित्रा मुद्गल** कृत 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203', 'नालासोपारा' 2016 आदि कई उपन्यासों तथा अनेक रचनाओं में किन्नरों के दुःखों और उनकी पीड़ाओं का मार्मिक चित्रण किया गया है।

विकलांग विमर्श एक ऐसा विमर्श है जिसमें देश-विदेश के कई विकलांग दार्शनिक, साहित्यकार, कलाकार और खिलाड़ी इसके शिकार हैं परंतु उनकी भी इच्छा, जीजिविषा, आत्मविश्वास, जीवन राग और अभ्यास के बल पर दुनिया बदलने की ताकत होती है। यह कहना समिचीन होगा कि प्रोत्साहन, परामर्श और हिम्मत के बलबूते विकलांगों द्वारा महान कार्य करते हुए समाज विकास में उन्होंने आदित्य योगदान दिया है। शारीरिक अथवा मानसिक विकलांग व्यक्ति को अधिक सशक्त क्रियाशील एवं कार्य कौशल चित्रित करते हुए भीतरी शक्ति को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है। जिसे पढ़ते हुए विकलांग व्यक्ति में जीने की इच्छा शक्ति जागृत होती है। यही चित्र हिंदी साहित्य जगत में विकलांग विमर्श को अधिक सशक्त बनाने तथा विकलांग विमर्श की नींव स्थापित करने का अवसर प्रदान करती है।

निष्कर्ष:- वर्तमान समय में हिंदी साहित्य जगत में कई छोटे-छोटे विमर्श जन्म लेकर विकसित होते नजर आ रहे हैं जिससे छोटे-छोटे समूह जाति और वर्गों का प्रतिनिधित्व साहित्य जगत में उद्घाटित हो रहा है। उपर्युक्त चर्चित विभिन्न विमर्शों के अलावा अनेक अल्पसंख्यक विमर्शों की चर्चा आज हिंदी साहित्य जगत में हो रही है। हिंदी साहित्य में विविध विमर्श जैसे स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, उत्तर आधुनिक विमर्श, पर्यावरण विमर्श आदि का उद्देश्य समाज के उन वर्गों और मुद्दों को आवाज देना है, जिन्हें मुख्य धारा की अभिव्यक्ति से अब तक वंचित रखा गया था। इन विमर्शों ने साहित्य को केवल मनोरंजन या सौंदर्य बोध का माध्यम न बनाकर सामाजिक परिवर्तन का सशक्त उपकरण बना दिया है। इन विमर्शों के माध्यम से साहित्य में समानता, न्याय, मानवीय गरिमा और स्वाधीनता की भावना को बल मिला है। स्त्री विमर्श ने नारी की अस्मिता और स्वायत्तता पर जोर दिया है वहीं दलित और आदिवासी विमर्श ने सामाजिक विषमता और शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई और पर्यावरण विमर्श ने मनुष्य एवं प्रकृति के संतुलन की चिंता व्यक्त की है। अंततः यह कहा जा सकता है कि विविध विमर्शों ने हिंदी साहित्य को अधिक जीवंत, जन्मोन्मुख और यथार्थ परक बनाया है। इसे साहित्य की सीमाएं विस्तृत हुई हैं और यह समाज के हर तबके की अनुभूति और संघर्ष का दस्तावेज बन गया है।

संदर्भ :

1. डॉ. संजय सिंह, हिन्दी कहानियां, दिल्ली 1998 पृष्ठ – 5.
2. डॉ. संजय सिंह, हिन्दी कहानियां, जय भारती प्रकाशन, इलाहाबाद,2008 पृष्ठ – 150.
3. डॉ. संजय सिंह, हिन्दी कहानियां, जय भारती प्रकाशन, इलाहाबाद,2008 पृष्ठ – 150.
4. डॉ. रमेश कुरे, डॉ. मालती शिन्दे आदिवासी साहित्य विविध आयाम, विकास प्रकाशन, कानपुर 2013, पृष्ठ-7.
5. डॉ. रमेश कुरे, डॉ. मालती शिन्दे आदिवासी साहित्य विविध आयाम, विकास प्रकाशन, कानपुर 2013, पृष्ठ-7.
6. डॉ. एम फिरोज खान, डॉ. शगुफ्ता नियाज़, साहित्य के आईने में आदिवासी विमर्श, वांग्मय बुक्स प्रकाशन, अलीगढ 2015 पृष्ठ-61.
7. मार्टिन मेकवेल, मेरी कथा दलित यात्रा, संघर्ष और भविष्य, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2008 पृष्ठ-8.
8. सं. देवी प्रसाद वर्मा – माधव राव सप्रे की कहानियां, ज्ञानगंगा प्रकाशन दिल्ली,1998, पृष्ठ- 5.
9. सं. देवी प्रसाद वर्मा – माधव राव सप्रे की कहानियां, ज्ञानगंगा प्रकाशन दिल्ली,1998, पृष्ठ-5.
10. सविता चौधरी, हिन्दी साहित्य में आदिवासी एवं स्त्री विमर्श, रोली प्रकाशन कानपुर 2017 पृष्ठ-64.
11. सविता चौधरी, हिन्दी साहित्य में आदिवासी एवं स्त्री विमर्श, रोली प्रकाशन कानपुर 2017 पृष्ठ-64.